श्रीमदाद्यशंकराचार्य विरचित

भज गोविन्दम्

का

भोजपुरी पद्यानुवाद

मेरे जीवन के उद्धारक
परमपूज्य श्री सत्यनारायण
मिश्र 'शास्त्री' को
सादर समर्पित
अर्जुन तिवारी

अनुवादक :—

डॉ० अर्जुन तिवारी

पत्रकारिता पीठ प्रकाशन

(प्रथम पुष्प)

भाटपार रानी

देवरिया (उ०प्र०)

१९८१

मूल्य—दो रुपया

काशी के सुप्रतिष्ठित समाजसेवी स्व० गोपाल लाल गुप्त की पावन स्मृति में प्रकाशित।

प्रकाशक :—

दिनेश्वर तिवारी

शिव-सदन

भाटपार रानी (देवरिया)

मुद्रक

जयभारत प्रेस,

फूलबाजार, बाँसफाटक वाराणसी

शुभ कामना

भोजपुरी का काव्य-प्रवाह मंजुल, संगीतमय और हृदय स्पर्शी तो होता ही है, वह सूक्ष्म-भावों को अभिव्यक्त करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ होता है। फलतः भोजपुरी भाषा में अनूदित होने वाले गद्य और पद्य की मिठास और भाव-ग्राहता कहीं-कहीं मूल से भी बढ़ जाती है। काव्य-रचना में तो उसका सौष्ठव अधिक मुखर हो जाता है। कोमल भावों के लिये शब्दानुभूति की जितनी व्याप्ति उसमें है, उतनी वर्तमान किसी बोली में कठिनाई से मिलेगी।

इस पुस्तक में डा० अर्जुन तिवारीने आद्यशंकराचार्यके 'भज गोविन्दम्' के स्तोत्रों को भोजपुरी काव्य में रखकर लोक मंगल के महत् उद्देश्य की पूर्ति की हैं। इस वरेण्य कार्य के लिये उन्हें हार्दिक बधाई है। 'भज गोविन्दम्' का लालित्य और उसका ऐहिकता पर प्रहार विश्ववंद्य है। उसकी कोमलतम् भावनाओं को उपस्थित करने में कवि को बड़ी सफलता मिली है। मूलकी सरसता खण्डित नहीं होने पाई है। उसका गेय पक्ष भी सुरक्षित रह गया है, यह विशेष आनन्दका विषय है। शंकराचार्य के स्तोत्र जगत से पलायन या निर्वेद के प्रेरक नहीं है, वल्कि वे मनुष्य को उसकी लिप्ततासे बचाकर, असम्पृक्त रखकर उपराम जीवन को ले चलने का संदेश देते हैं। वे जगत् का सात्विक साधन बनाकर ईश्वरोन्मुख होते जानेका सतत सोपान बनाते हैं। इसके लिये वे कठोर सत्य उपस्थित कर जगतकी वास्तविक निस्सारताको उजागिर कर देते है। भारतका यही आध्यात्मिक संदेश शाश्वत माना गया है, त्याग पूर्वक जगत का भोग।

इसमें संदेह नहीं कि स्वयं भारत मही भी इस सनातन जीवन आधार को निरंतर भूलती जा रही है। जन-जन तक उस दिव्य जीवन को ध्वणित करने में भोजपुरी का यह अनुवाद बड़ा कार्य करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। सदय-हृदय व्यक्ति इसका चतुर्दिक आदर करेगें। हमारे इतिहास के उन स्वर्णिम जीवन-क्रम का मातृ भूमि और उसके माध्यम से विश्व कल्याण के लिये पुनरोदय कराने में भोजपुरी-स्तोत्र सफलकार्य हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

आचार्य केशव चन्द्र मिश्र कुलमुख्य

आपन बात

'केहाँ केहाँ' करते सभे जनमेला बाकिर घरकच करकच से दूर रहे खातिर धरम पर चले के चाव कोई ना करे। हिन्दू धरम के प्रवर्त्तक आदि शंकराचार्यजी के कहनाम हऽ कि मदारी के रुपया अइसन ई संसार बा। मदारी रुपया बनावेला, देखा-देखा के सभके रीझावेला आ अपने पेट भरे के चिन्ता में सभसे पइसा मांगेला। ओकर बनावल रुपया साँच रहीत तब ऊ दूसरा से पइसा काहे मांगीत ? शंकराचार्यजी बतवनीं कि एके ब्रह्म-ज्योति सभ में बा एह से छोट-बड़, करोड़ीमल आ छकोड़ी प्रसाद के भेद मिटा के प्रेम करेंके चाहीं तबे आपन आ संसार के कल्याण होई। कुछ लोग बेबूझले कह देला कि शंकराचार्यजी के मायावाद आलस आ असकति बढ़ावता। बात ठीक उल्टे बा। उहाँ के उपनिषद, गीता आ ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखनीं आ हर घड़ी सत्संगति में रहके शुभ काम करे के मंतर बतवनीं। शंकराचार्य के 'मोहमुद्गर' में साँच के बखान बा जवना के बाँच के लोग संसार के रहस्य समझ सकेला।

बचपन में अपना बाबा स्व० जगदम्ब तिवारी आ ब्रह्म देव व्यास, बाबूजी रास बिहारी अउर चाचा मदन तिवारी से 'भज गोविन्दम्' सुननीं। होश भइला पर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सियाराम शरण गुप्त, पं० राम नारायण दत्त शास्त्री के एपर टीका पढ़नीं। पिछले पन्द्रह बरिस से पत्रकारिता से लगाव रहला के नाते हमरा ईहे बुझाइल कि सत्य के शोधन आ प्रकाशन पत्रकारिता के खाँटी लक्ष्य हऽ। साँचो, ई

जिनगी त एगो घटना हऽ जवना के ककहरा (कव, कइसे, कवन, आ का) सभके जाने के चाहीं । शंकराचार्यजी के 'मोहमुदगर' हमरा खातिर चिन्तामणि बा एही से एकर अनुवाद कइनीं । ई अनुवाद नीक लागे तऽ त्रिपाठी द्वय (आचार्य विश्वरूप त्रिपाठी पं० महावीर त्रिपाठी) श्री रामायण उपाध्यायजी पी.सी. दूबे आ श्रीहर्षधरजी पत्रकारके आसीरबाद समझे के चाही । साहित्य संसार क सिंगार आ भोजपुरी माटी के रतन डाॅ० विद्या निवासजी मिश्र चलते-फिरते जवन संशोधन कइनीं ऊ हमरा खातिर गूंगा के गुड़ बा । हम सभके प्रति नत मस्तक बानीं ।

ई छोटहन पोथी पढ़के भोजपुरिहा भाई लोग सनातन धरम आ शंकराचार्यजी के महातिम जान जाई आउरी समझी लोग कि ऊहाँ अइसन दार्शनिक, धर्म सस्थापक आ दिव्य पुरुष एह धरती पर आज तक ना भइल । आदि शंकराचार्यजी अइसन अमृत बाणी बरसवनी कि उटपटांग धरम झीसी नीयर हेरा गइल, करमकांडी आ आडम्बरी लोग सुटुक गइल । ऊहें के प्रताप हऽ कि वेद रह गइल आउर हिन्दू धरम लह लहा उठल । हम आपन मेहनत तबे सफल मानब जब कि लोग शंकराचार्यजी के सुमिरी आ ऊहाँ के बतावल राह पर चली ।

अर्जुन तिवारी पत्रकार

शिव सदन, भाटपाररानी देवरिया

देववाणी

(१)

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
भज गोविन्दं मूढ़मते ।
सम्प्राप्ते सन्निहिते मरणे
नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ॥ भज०

(२)

मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णां
कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं
वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥ भज०

(३)

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं
दृष्ट्वा मायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादिविकारं
मनसि विचारय वारंबारम् ॥ भज०

लोकवाणी

(१)

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज भाई रे।
रटल पढ़ाई काम न आई
जब भउवति नियराई रे ॥ भज०

(२)

धन जोड़े के लालच छोड़ऽ
संतोषी बान सुमति धरऽ तूँ।
अपने करमे जेतने पइबऽ
ओतने धन में मउज करऽ तूँ ॥ भज०

(३)

जुवती के जोबन सिंगार के
माया में मत मन भरमइहऽ।
ई सब का हऽ ? मांसे चरबी
मन में एपर खूब बिचरिहऽ ॥ भज०

(४)

नलिनीदलगतसलिलं तरलं
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं
लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ भज०

(५)

यावद् वित्तोपार्जनशक्तः
तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चात् जर्जरभूते देहे
वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे ॥ भज०

(६)

यावत् पवनो निवसति देहे
तावत् पृच्छति कुशलं गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये
भार्या बिभ्यति तस्मिद् काये ॥ भज०

(४)

जिनगी ढरकी कब ना जानी
पुरइन पर के ई हऽ पानी।
रोग सोक सबके घेरले बा
दुख के मारल सब अभिमानी ॥ भज०

(५)

जबले बाबू खूब कमइबऽ
आदर परिवारे से पइबऽ।
बाद में जल्पा हो गइला पर,
के पूछो ? दुत्कारल जइबऽ ॥ भज०

(६)

तहरा से सब कुसल पूछिहें
सांस रही जबले ए तन में।
प्रान पखेरुवा के उड़ला पर
मेहरी देखि डेरैहें मन में ॥ भज०

(७)

बालस्तावत् क्रीडासक्तः
तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः
पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥ भज०

(८)

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः
संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कुत आयातः
तत्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ॥ भज०

(९)

सत्संगत्वे निस्संगत्वं
निस्संगत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चलचित्तम्
निश्चल चित्ते जीवन्मुक्तिः ॥ भज०

(७)

खेललऽ कूदलऽ लरिकाईं में,
बितल जवानी जुवती साथे।
करते फिकिर बुढ़उती कटलऽ
ब्रह्म न तनिको लगले हाथे॥ भज०

(८)

अजब हाल दुनिया के देखऽ
के बेटवा हऽ कवन लुगाई ?,
केकर तूँ अइलऽ कहवाँ से
तत्त्व-ज्ञान के समुझऽ भाई॥ भज०

(९)

सज्जन साथ विराग उपजिहें
ओसे माया मोह विलइहें।
अहथिर चित्त तबे हो जइहें॥
जिनगी से छुटकारा पइहें॥ भज०

(१०)

वयसि गते कः कामविकारः
शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः
ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥ भज०

(११)

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं
हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा
ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥ भज०

(१२)

दिनमपि रजनी सायं प्रातः
शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः
तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥ भज०

(१०)

उमिर ढलल वासना कहाँ बा ?
पानी सुखला ताल कहाँ बा ?
छूँछ हाथ परिवार न पूछे
भइल ज्ञान संसार कहाँ बा ? भज०

(११)

धन जन यौवन पर जनि गरजऽ
काल निगलिहें तनकी भर में।
माया के संसार छोड़ि के
पइठऽ परमब्रह्म के घर में॥ भज०

(१२)

राते दिन फिर सांझ सबेरा
सिसिर बसंते लगले फेरा।
काल नचावत घटत उमिरिया
आसा–मोह जमवले डेरा॥ भज०

(१३)

का ते कान्ता तन गत चिन्ता
वातुल, कि तव नास्ति नियंता ?
क्षणमपि सज्जन संगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका ॥ भज०

(१४)

जटिलो मुंडी लुञ्चितकेशः
काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ़
उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥ भज०

(१५)

अंगं गलितं पलितं मुण्डं
दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं
तदपि न मुंचति आशापिण्डम् ॥ भज०

(१३)

मेहरारु के फिकिर कवन बा ?
बोल बतक्कड़ नइखन स्वामी ?
सज्जन संगति नैया लेके
सागर पार उतरबऽ कामी ॥ भज०

(१४)

जटा बढ़वले माथ मुड़वले
केश नुचवले गेरुआधारी ।
देखत देखत मूढ़ न बुझलऽ
बहुरुपिया ई पेटू भारी ॥ भज०

(१५)

थाकल देह केस सब पाकल
पचकल मुँह जब दँतवा टूटल ।
ठेंघुनी लेके बुढ़ऊ चललें
आसा–टिसना तबो न छूटल ॥ भज०

(१६)

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू
रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
करतलभिक्षा तरुतलवासः
तदपि न मुंचत्याशापाशः ॥ भज०

(१७)

कुरुते गंगासागरगमनं
व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीन सर्वमनेनं
मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ॥ भज०

(१८)

सुरमंदिरतरुमूलनिवासः
शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः
कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ भज०

(१६)

पीठी घाम आगि के तापत
घिकुरी मारि के रात बितवलऽ ।
भीख हाथ में पेड़ तरे रहि
सहि सहि सासत आसन तजलऽ ॥ भज०

(१७)

गंगा सागर तीरथ जइबऽ
व्रत रहबऽ धन-धान लुटइबऽ ।
जबले साँचो ज्ञान न होई,
सौ सौ जनमें मुकुति न पइबऽ ॥ भज०

(१८)

देव दुआरे पेड़ सहारे
सूतऽ भुई मृगछाला लेलऽ ।
सम्पत मोह छोड़ि के सगरी
बैरागी बन सुख से खेलऽ ॥ भज०

(१९)

योगरतो वा भोगरतो वा
संगरतो वा संगविहीनः ।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं
नन्दति नन्दति नन्दत्येव ।। भज०

(२०)

गेयं गीता नामसहस्रं
ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रं ।
नेयं सज्जनसंगे चित्तं
देयं दीन जनाय च वित्तम् ।। भज०

(२१)

भगवद्‌गीता किञ्चिदधीता
गंगा जललवकणिका पीता ।
सकृदपि तस्य मुरारिसमर्चा
क्रियते तस्य यमेन न चर्चा ।। भज०

(१९)

चाहे जोगी चाहे भोगी
मोही या निर्मोही बनबऽ।
परम ब्रह्म में चित्त रमइबऽ
परमानन्द तूँ पइबे करबऽ ॥ भज०

(२०)

सहस नाम नित गीता गावऽ
श्रीपति में तूँ ध्यान लगावऽ।
सज्जन साथे चित्त लगा के
दीनन में धन खूब लुटावऽ ॥ भज०

(२१)

भगवद्गीता तनिको पढ़िहें
गंगा-जल जो कंठ छुअइहें।
एक बार जे भगवत् पूजी
जम काहे के बात चलइहें ॥ भज०

(२२)

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे
कृपया पारे पाहि मुरारे ॥ भज०

(२३)

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः
पुण्यापुण्यविवर्जित पन्थः ।
नाहं न त्वं नायं लोकः
तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥ भज०

(२४)

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः
का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं
विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ॥ भज०

(२२)

बार-बार के जनम मरन बा
बार-बार माँ गरभ-सयन बा ।
भव-सागर से पार कठिन बा,
दया दिखाईं दास सरन बा ॥ भज०

(२३)

चिथड़ा के गुदरी बनववलऽ
पाप पुन्न के भेद मिटवलऽ ।
नाहम ना तू दुनिया कुछ ना
जनलो पर तूँ शोक में पड़लऽ ॥ भज०

(२४)

तू हम कवन कहाँ अइनी सब
केहऽ बाप कवान हऽ माई ।
समझऽ दुनिया के तूँ खाली
सपना अस अब छोड़ऽ भाई ॥ भज०

(२५)

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः
व्यर्थं कुप्यसि मय्यपि विष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं
सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥ भज०

(२६)

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ
मा कुरु यत्नं विग्रह-सन्धौ
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥ भज०

(२७)

कामं क्रोधं लोभं मोहं
त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञान विहीना मूढ़ाः
ते पच्यन्ते नरकनिगूढ़ाः ॥ भज०

(२५)

हमरे तहरे सबमें भगवन
डाह छोड़ि सबके अपनावऽ।
भेद-भाव भुलवा मन-मूरुख
सब में आपन भाव रमावऽ॥ भज०

(२६)

बैरी मित्र पुत्र या भाई
से अब राग-द्वेष बिसरावऽ।
चाहऽ झट से ईस मिलन तऽ
सब में समता भाव जगावऽ॥ भज०

(२७)

काम क्रोध आ लोभ मोह तजि
'के हम हईं' इन्हें तूँ जानऽ।
आतम ज्ञान बिना जे मुरुख
परिहें नरक ऊ निश्चय मानऽ॥ भज०

(२८)

सुखतः क्रियते रामाभोगः
पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुंचति पापाचरणम् ॥ भज०

(२९)

अर्थमनर्थं भावय नित्यं
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः
सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥ भज०

(३०)

प्राणायामं प्रत्याहारं
नित्यानित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं
कुर्ववधानं महदवधानम् ॥ भज०

(२८)

पहिले सुख से तिरिया सेवलऽ
गतर गतर तब रोगे पवलऽ।
मृत्यु लोक में मरन सरन बा
पाप करम ना तबहूँ तजलऽ ॥ भज०

(२९)

धन तऽ अनरथ के कारन हऽ
सुख तनिको नइखे ई सब से।
धनी बाप चिहुँके बेटवे से
ईहे देखल जाला कब से ॥ भज०

(३०)

रोकल साँस दमन इन्द्री के
नित्य-अनित्य तत्त्व के बूझऽ।
जाप जोग मंतर समाधि पर
ध्यान धरऽ एही में जूझऽ ॥ भज०

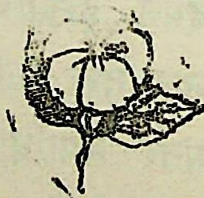
(३१)

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः
संसारादचिराद्भवमुक्तः
सेन्द्रियमानस नियमादेवम्
द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥ भज०

लोकवाणी

(३१)

गुरुपद कमल सहारे रहबऽ
झट से भव-सागर तर जइबऽ ।
इन्द्री मन सबके संजम से
हियरे भीतर हरी निरखबऽ ॥ भज०



जगद्गुरु श्री शंकराचार्य : एक दिव्य विभूति

जगद्गुरु का जीवन, पावन, प्रेरक गौरवशाली।
पढ़ें सभी औ सोचें तो छिटके जीवनमें लाली ।।

पाठको ! आप अमृतपुत्र हैं क्योंकि आदि शंकराचार्य जैसे युग-प्रवर्त्तक महापुरुष आपके पूर्वज हैं। आप ही विचारें, क्या आपने कभी इन्हें जानने की आकांक्षा व्यक्त की है ? यदि नहीं, तो आप निश्चित-मानें कि महान विभूतियों का विस्मरण राष्ट्र-द्रोह है।

जन्म व बाल्यकाल

बौद्ध धर्म में ह्रास और घोर नास्तिकता से क्षुब्ध होकर केरल के काल्टी ग्रामवासी नम्बूदरी ब्राह्मणरत्न श्री शिवगुरु और उनकी धर्म-परायण पत्नी आर्यम्बा की सदिच्छा हुई "हे भगवन। यदि मुझे कोई पुत्र होता तो वह वाममार्गियों को सन्मार्ग पर ला देता"। इसी मनो-कामना की पूर्ति में दम्पति ने कठिन तप किया। लगभग ८४५ वि. के वैशाख शुक्ल दशमी को उन्हे एक पुत्ररत्न का प्राप्ति हुई। भगवान शंकर का वरदान मानकर शिवगुरु ने पुत्र का नाम शंकर रखा।

शंकर माता-पिता के आँखों का तारा था साथ ही पड़ोसियों का बड़ा प्यारा। उसकी कुशाग्रबुद्धि को परखकर तीन वर्ष की आयु में ही अक्षरारम्भ कराया गया। वह 'एक श्रुतिधर' था। एक बार जो सुनता कंठस्थकर लेता। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही इस अद्वितीय प्रतिमाशाली बालक को लौकिक शास्त्रों का ज्ञान हो गया। उपनयनोपरांत उसे गुरु-कुल भेजा गया जहाँ वह स्वतः पढ़ता और साथियों, को भी पढ़ाता। इसी समय उसने 'बालबोध संग्रह' पुस्तक की रचना पूरी कर ली। गुरु-कुल की परम्परा के अनुरूप एक दिन बटु शंकर ने एक झोपड़ी के निकट

'भिक्षां देहि' की आवाज लगायी। निर्धन ब्राह्मणी को चिन्ता हुई कि दरवाजे से ब्रह्मचारी खाली हाथ कैसे लौटे ? ब्राह्मणी ने भिक्षा के रूप में एक आँवला ब्रह्मचारी के हाथ पर रख दिया अपनी अकिञ्चनता पर वृद्धा की आँखें डबडबा आई। ब्रह्मचारी शंकर ताड़ गया और सहानुभूति में फूट-फूट कर रोने लगा। मन में ही उसने निर्धनता दूर करने का सत् सङ्कल्प लिया। पड़ोस में एक धनी परिवार था। परिवार का मुखिया आह्लादित हुआ 'आज पुण्योदय है, एक दिव्य ब्रह्मचारी भिक्षा मांगने द्वार पर आ रहा है'। जैसे ही भिक्षा देना चाहा शंकर ने हाथ खींच लिया तथा कहा 'जिसके हृदय में अपने पड़ोसियों के प्रति प्रेम नहीं, ममता नहीं, उपकार करने की प्रवृत्ति नहीं, उसकी भिक्षा से पाप-वृत्ति क्यों ली जाय ?' धनी की आँखे खुल गयीं। उसने स्वर्ण के आँवले से ब्राह्मण का घर भर दिया। इस प्रकार शंकर ने अपनी बाल्यावस्था में ही परोपकारी वृत्ति का परिचय दिया। आठ वर्ष तक गुरुकुल में रहकर शंकर समस्त वेद शास्त्रों में पारंगत हो गया तथा शंकराचार्य होकर घर लौटा।

शंकराचार्य की मातृ-भक्ति

इसी बीच शंकर को पिता के सुख से वंचित होना पड़ा। उसे जीवन की निस्सारता का ज्ञान हुआ। माता आर्यम्बा घर पर पुत्र वधू देखने हेतु ललक रही थी जब कि पुत्र सन्यास लेने का उपक्रम रच रहा था। एक दिन नदी स्नान को जाते समय शंकराचार्य ने कहा, 'माँ ! तुम और पिताजी वैदिक धर्म का प्रचार चाहते थे न ? तो आज ही तुम आदेश दो कि मैं सन्यासी बनकर इस पुण्य कार्य में जुट जाऊँ।' वृद्ध माँ बिलख बिलखकर कहने लगी. 'बेटा ! तेरे पिता नहीं रहे। तू भी मुझे छोड़ना चाहता है। अब मेरा अंतिम संस्कार कौन करेगा ? पितरों को पानी कौन देगा ?' शंकर ने दृढ़तापूर्वक कहा 'मैं करूँगा और मेरे बाद समस्त भारतीय समाज तेरा नाम लेगा गुण गायेगा। मेरी प्यारी माँ ! तुम्हीं देखो, आज सर्वत्र वाममार्गी फैलते जा रहे हैं। भारतीय

सनातन धर्म नष्ट हो रहा है। तुम्हीं सोचो, ऐसी अवस्था में तेरे नाती पोते होंगे तो क्या वे पानी देने की सार्थकता समझेंगे?' माँ हतप्रभ थीं। पुत्र मोह संसार का सबसे बड़ा आकर्षण होता है। माँ को समझाने के लिए पुत्रको एक और अभिनय करना पड़ा। शंकराचार्य स्नान हेतु जैसे नदी में उतरे चीख-चीख का चिल्लाने लगे, 'बचाओ, मगर ने पाँव कपड़ लिया, मैं गया।' पुत्र के जीवन को संकट में देखकर माँ व्यग्र हो गयी, इधर-उधर देखा, कहीं उपाय नहीं सूझा। शंकराचार्यने कहा, 'देश व धर्म की रक्षा के लिए सम्भवतः भगवान बचा दें, तू मुझे सन्यासी बन जाने दे। निर्णय में विलम्ब करोगी तो जीवन भर पछताती रहोगी।' माँ आर्यम्बा ने पुत्र की मृत्यु की अपेक्षा उसका सन्यासी बनकर जीवित रहना ही श्रेयस्कर माना, तथा 'आपात् सन्यास' ग्रहण करने की अनुमति दिया। मगर से मुक्त होकर सन्यासी रूप में शंकराचार्य नदी से निकले। कहा गया है कि—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित् ।
षोडशे कृतवान भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरस्यगात् ॥

भगवन् गोविन्दपाद तथा उनके गुरु भगवान गौड़पादाचार्य के सान्निध्य में रहकर शंकराचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् कारिका, वेदान्त प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखा। हाथ में भगवत् ध्वज-दण्ड और कमण्डलु लेकर धर्म-यात्रा के लिए निकलने ही वाले थे कि उनके सम्बन्धी अग्नि शर्मा माता द्वारा प्रेषित धन के साथ आ पहुँचा तथा सूचित किया कि 'आर्यम्बा अब अंतिम घड़ियाँ गिन रही हैं,' माँ द्वारा प्रदत्त धन के सदुपयोग हेतु बद्रिकाश्रम में बद्रीनाथ के मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ कर शंकराचार्य कालटी की ओर द्रुतगति से चल पड़े। घर पहुंचकर शंकराचार्यने माँ का चरण पकड़ लिया क्योंकि उनकी मान्यता थी "माँ साक्षात देवी होती है, भगवान का दर्शन उसीके मुख मंडल

पर किया जा सकता हैं, वह सदा सबके लिए पूज्या होती है" । माताकी खाट के पास बैठे रहना, दवा देना, पथ्य का प्रबंध करना, पंखा झलना अब यही शंकराचार्य का कार्य था। माँ को नियमत नदी-स्नान में बाधा न पड़े अतः नदी में बल्लियों का बेड़ा बाँधकर तथा मंत्र शक्ति द्वारा शंकराचार्य ने नदी का प्रवाह अपने घर की ओर मोड़ लिया। आर्यम्बा द्वारा पूछे जाने पर पुत्र ने मां को अद्वैत की बातें बतलायी तथा उन्हें स्वरचित कृष्णाष्टक सुनाया। माँ ने कृष्ण का ध्यान किया तथा उसी में वह सदा के लिए लीन हो गयीं। सन्यासियों हेतु वर्जित दाह-संसार के कारण पड़ोसियों ने अन्त्येष्ठि कर्म में भाग नहीं लिया फलत शंकराचार्य ने अपने घर के आँगन में चिता रचाकर माँ का अग्नि संस्कार किया। उसी समय 'मातृ-स्तुति' का पाठ हुआ। कुछ दिन बाद गुरु गोविन्दपाद के रुग्ण-शैया पर होने का समाचार सुनकर शंकराचार्य ने अमरकांत की ओर प्रस्थान किया। गुरु ने उन्हें दिविजय-यात्रा हेतु आदेश दिया तथा वे स्वतः ब्रह्मलीन हो गए।

शंकराचार्य द्वारा भारत-भ्रमण

वेद-प्रचार, वाममार्गियों के उन्मूलन तथा बौद्धधर्म में व्याप्त आडम्बर को समाप्त करने के पवित्र लक्ष्य से शंकराचार्य ने भारत-भ्रमण प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम उनका आगमन काशी में हुआ जहाँ अपनी उपेक्षा देखकर एक चाण्डाल ने शंकराचार्य से कहा, 'सर्वात्मैक्य व अद्वैत की बात करने वाले आचार्य! आपके शिष्य भेद-भाव, छूआ-छूत की भावना से ग्रस्त हैं क्या यह उचित है?' शंकराचार्य को अपने शिष्यों की भूल पर ग्लानि हुई और उन्होंने उद्घोषित किया कि यह चाण्डाल ज्ञानी है, हम लोगों के लिए गुरु तुल्य हैं। प्रयाग में प्रवास के दौरान यमुनाष्टक, प्रयागाष्टक, माधवाष्टक की रचना के अतिरिक्त आचार्य ने एक कुष्ठ रोगी की सेवा-सुश्रुषा की तथा उसे पूर्णतः स्वस्थकर अपना शिष्य बना लिया। कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र, तथा भारती से सम्पर्क व शास्त्रार्थकर शंकराचार्य ने सर्वत्र अपनी विजय की दुंदुभी बजा दी।

"भगवान बुद्ध मेरे ही पूर्वज थे। उनकी सहृदयता, मानव-कल्याण की भावना, उनका तप, वैराग्य, शांति सबके लिए अनुकरणीय है।…हम तो उनके शिष्यों में व्याप्त लोलुपता, व आडम्बरपूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध हैं। सत्य ही, राजकुमार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त कर ईश्वरीय स्वरूप का साक्षात्कार किया। वे भगवान विष्णु के अवतार थे, आइए हम सभी उनको गौरवान्वित करें। भगवान बुद्ध के साक्षाकार स्थल गया को पितृ-तर्पण का स्थल बनावें, वहीं पितृ-श्राद्ध करता हुआ मानव अपने जीवन की सम्पूर्ण श्रद्धा अपने पूर्वजों के श्रीचरणों पर अर्पित करेगा।" तक्षशिला में शंकराचार्य की इस घोषणा के पश्चात् लाखों बौद्धों ने शंकराचार्य को अपना उद्धारक मान लिया।

भारत के कण-कण को तेजोदीप्त करने के बाद ३२ वर्ष की आयु में आचार्य शंकर ने अपने को विराट में लीन कर लिया।

शंकराचार्य के अमर संदेश

शंकराचार्य के चलते भारतवर्ष कर्मकाण्ड व नास्तिकता के गर्त्त में डूबने से बच गया। महान व्यक्तित्व, असाधारण पाण्डित्य, उदात्त चरित्र तथा अप्रतिम काव्य-प्रतिमा का भव्य रूप जैसा शंकराचार्य में था वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अपने कर्ममय जीवन द्वारा भारतीयों को यही संदेश दिया "मेरे सन्यास में अलगाव नही, अपनाव हैं, विरक्ति नहीं प्रेम है। हाँ, इस प्रेम में आसक्ति नहीं बंधन नहीं, मोह नहीं। इसमें संकीर्णता नहीं, विशालता हैं, दुर्बलता नहीं शक्ति है, व्यक्ति के लिए समाज का त्याग नहीं समाज के लिए व्यक्ति का राग है।"

शंकराचार्य के सिद्धान्त को अद्वैतवाद के रूप में जाना जाता है जिसका मूलमंत्र हैं, 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'। तात्पर्य यही कि ब्रह्म सत्य है, अविद्या के कारण जन्म-जरा, मृत्यु आदि सांसारिक क्लेशों को सहना पड़ता है। माया के चलते अपने पराये का भेद है। उनका अद्वैत वेदान्त

मात्र विद्वानों की वस्तु नहीं है अपितु यह व्यावहारिक धर्म है, संसार के समस्त प्राणी उसे अपनाकर सुख शांति पा सकते हैं। 'तत्वमसि' से सुस्पष्ट है कि जब सभी में एक ही ज्योति है तो भेद-भाव कैसा ? ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, छूत-अछूत का अन्तर कैसा ? सत्संग मे रहकर सदिच्छा से सत्कर्म करें तो सभी प्राणी अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं। भज गोविन्दम् (मोहमुद्गर) में सुबोध, सरस, सरल शैली मे इन्हीं तत्वों का विश्लेषण है। शंकराचार्य द्वारा लगभग २०० ग्रन्थ लिखे गए हैं।

विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति और सूर्य समन्वित पंचायतन-पूजन द्वारा आचार्य शंकर ने पारस्परिक सद्भाव जागरित किया। समाज को नियंत्रित करने व धर्म प्रसार हेतु चार शंकराचार्यों की अध्यक्षता में उन्होंने भारत के चार स्थानों में चार मठ स्थपित किया। ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम), शृंगेरी मठ-(रामेश्वरम्), गोवर्द्धनमठ (जगन्नाथपुरी) शारदा मठ (द्वारिकापुरी) के शंकराचार्य परम पवित्र, वेद वेदाङ्ग विशारद, योगविद् सर्वशास्त्रज्ञ होते हैं जो अपने अलौकिक वैदुष्य द्वारा धर्म प्रसार करते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय द्वारा शंकराचार्यने भारत भारती और भारतीयता का जितना कल्याण किया वह अवश्यमेव अविस्मरणीय है।

भारत आभारत हुआ, जगद्गुरु को पाय।
उनसे प्रेरित हों सभी, जो अब हैं निरुपाय ॥

धर्म की जय हो : अधर्म का नाश हो।
प्राणियोंमें सद्भावना हो : विश्व का कल्याण हो ॥

हर हर महादेव।

शुभ सम्मति

"... विविध लिप्सा, काम-वासना तथा वाह्याडम्बर से ग्रस्त मानव यदि स... सुख शान्ति चाहता है तो उसे भारतीय संस्कृति के उन्नायकों द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगामी बनना होगा। युगान्तरकारी दिव्य विभूति शंकराचार्य ने सद्ज्ञान, प्रेम-भावना, अनासक्ति और सत्संग का जो मार्ग बतलाया वह आज की विकट परिस्थितियों में वरेण्य है। देववाणी में संजोए उनके शुभ सन्देशों को लोकवाणी में अनूदित कर डॉ० अर्जुन तिवारी ने जन-जन में सद्विवेक जागरित कराने का मंगलकारी प्रयास किया है। मुझे विश्वास है कि धार्मिक, नैतिक शिक्षा से परिपूर्ण यह कृति समाज-सेवियों, शिक्षकों, शिक्षार्थियों द्वारा समादृत होगी।

श्याम नारायण चतुर्वेदी, प्राचार्य, भाटपार रानी

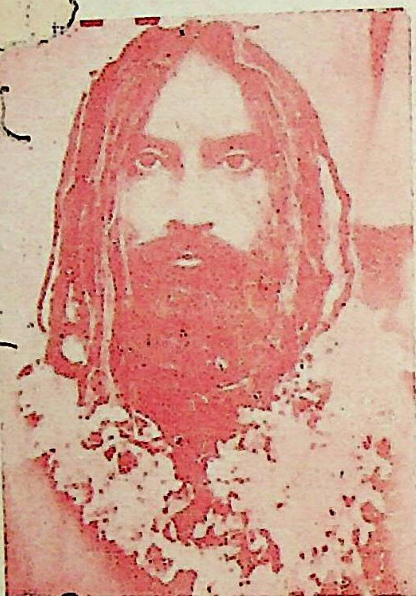
" डॉ० अर्जुन तिवारी ने इस लोकप्रिय रचना का भोजपुरी में अनुवाद कर एक अभाव की पूर्त्ति की है। यह अनुवाद स्पष्ट, सरस, मुहावरेदार और मूल को तरह ही गेय और पठनीय है। अह अनुवाद पाठक और श्रोता को सिर्फ मूल का रसास्वादन ही नहीं कराता बल्कि सहज भाव से मूल की तरह मानसिक भूमिका और वातावरण तैयार करने में समर्थ है। इस संस्कृत रचना को इतनी स्वाभाविक और सरल शैली में भोजपुरी में उपलब्ध करने के इस सत्प्रयत्न और सफलता पर मैं उन्हें बधाई देता हूँ।

गंगा शरण सिंह
१२, राजेन्द्र नगर, पटना

"...शंकराचार्य के स्तोत्र लोकप्रिय होकर लोक-कंठो में निवास ... पर 'स्व-भाव' की भाँति 'पर-भाव' को भी सरल तथा सुगम बना देना सब... लिये सम्भव नहीं हो पाता। ऐसे दुरूह कार्य का निर्वाह डॉ० अर्जुन तिवारी ने सफलता पूर्वक किया है। उनका यह अनुवाद भोजपुरी भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय बन गया है। ऐसे पुनीत कार्य के लिए डॉ० तिवारी बधाई के पात्र हैं।

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
२३९ चक, इलाहाबाद

शुभाशीर्वाद



भज गोविन्दम् पाठ करी जे,
माया मोह मिटी सुख पाई।
कलजुग के तब मरम समझिके
जीवन के सब सफल बनाई।

परमपूज्य १००८ महर्षि
श्री देवराहा बाबा

श्री डॉ० अर्जुन तिवारी

नारायण रमण

भोजपुरी भाषा में श्री जगद्गुरु शंकराचार्य के 'मोहमुद्गर' का पद्यानुवाद रस और प्रवाहपूर्ण है। इससे संस्कृत न जानने वालों को भी प्रबोध और ज्ञान वैराग्य का अनुभव प्राप्त कर सकेंगे। उत्तम रचना लोकप्रिय हो ऐसी शुभ कामना है—श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की ओर से।

प्रेषक
वेदान्ती स्वामी
वाराणसी

आपका अनुवाद अच्छा है।
भगवान आपको और सफलता दें।।

श्री निरंजन
(पुरीपीठाधीश्वर)